

कहानी

घीसा

महादेवी वर्मा



सभी चित्र: उदय खरे

वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है, यह जान लेना सहज होता तो मैं भी आज गांव के उस मलिन सहमे नन्हे-से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती, जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जलराशि में विलीन हो गया है।

गंगा पार झूंसी के खंडहर और उसके आस-पास के गांवों के प्रति मेरा जैसा अकारण आकर्षण रहा है, उसे देखकर ही सम्भवतः लोग जन्म-जन्मान्तर के संबंध का व्यंग करने लगे हैं। हे भी तो आश्चर्य की बात! जिस अवकाश के समय को लोग इष्ट-मित्रों से मिलने, उत्सवों में सम्मिलित होने तथा अन्य आमोद-प्रमोद के लिए सुरक्षित रखते हैं, उसी को मैं इस खंडहर और उसके क्षत-विक्षत चरणों पर पछाड़ें खाती हुई भागीरथी के तट पर काट ही नहीं, सुख से काट देती हूं।

दूर-पास बसे हुए गुड़ियों के बड़े-बड़े धरौदा के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुतें, कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का

झुण्ड पीतल-तांबे के चमचमाते मिट्टी के नए लाल और पुराने बदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आता है, उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्वैत स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई छेदों से चलनी बनी हुई धोती पहने रहती हैं। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अंगुल चौड़ी सिंदूर-रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लट्टें मुख को घेर कर उसकी उदासी को और अधिक केन्द्रित कर देती हैं। किसी की सांवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रहकर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुंचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियां काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चांदी के पछेली-ककना की झनकार के साथ ही बात करती है।

किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झांक भर लेती है और किसी की ढारें लम्बी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है। किसी के गुदना गुदे गेहूं पैरों में चांदी के कड़े सुडौलता की परिधि-सी लगते हैं और किसी की फैली उंगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही रांगे और कांसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियां बना देती हैं।

वे सब पहले हाथ-मुंह धोती हैं, फिर

पानी में कुछ घुसकर घड़ा भर लेती हैं - तब घड़ा किनारे रख, सिर पर इंडुरी ठीक करती हुई मेरी ओर देखकर कभी-मलिन, कभी-उजली, कभी दुःख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने-मेरे बीच का अन्तर उन्हें ज्ञात है, तभी कदाचित् वे मुस्कान के सेतु से उसका वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।

ग्वालों के बालक अपनी चरती हुई गाय-भैसों में से किसी को उस ओर बहकते देखकर ही लकुटी लेकर दौड़ पड़ते, गडरियों के बच्चे अपने झुंड की एक भी बकरी या भेड़ को उस ओर बढ़ते देखकर कान पकड़कर खींच ले जाते हैं और व्यर्थ दिन भर गिल्ली-डंडा खेलने वाले निठल्ले लड़के भी बीच-बीच में नज़र बचाकर मेरा रुख देखना नहीं भूलते।

उस पार शहर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए ग्वाले, किले में काम करने जाते या घर आते हुए मज़दूर, नाव बांधते या खोलते हुए मल्लाह, कभी-कभी 'चुनरी त रंगाउव लाल मजीठी हो' गाते-गाते मुझ पर दृष्टि पड़ते ही अचकचा कर चुप हो जाते हैं। कुछ विशेष सभ्य होने का गर्व करने वालों से मुझे एक सलज्ज नमस्कार भी प्राप्त हो जाता है।

000

कह नहीं सकती, कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया, पर जब बिना कार्यकारिणी के, निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और सारांश यह कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के, मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर

एकत्र हो गए, तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गम्भीरता का भार वहन कर सकी।

और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने धुले कुरते और ऊंची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लम्बा कुरता पहने खेत में डराने के लिए खड़े किए हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टांगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुण सौम्यता और निष्प्रभ पीली आंखों में संसार भर की उपेक्षा बटोर बैठे थे; पर घीसा उनमें अकेला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अकेला ही आता है।

वह गोधूली मुझे अब तक नहीं भूली। संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिपकर अंजन की मूठ चला दी थी। मेरा नाव वाला कुछ चिंतित-सा लहरों की ओर देख रहा था; बूढ़ी भक्तिन मेरी किताबें, कागज़-कलम आदि सम्भाल कर नाव पर रख कर बढ़ते

अंधकार पर खिजलाकर बुदबुदा रही थी या मुझे कुछ सनकी बनाने वाले विधाता पर, यह समझना कठिन था। बेचारी मेरे साथ रहते-रहते दस लम्बे वर्ष काट आई है, नौकरानी से अपने-आपको एक प्रकार की अभिभाविका मानने लगी है; परन्तु मेरी सनक का दुष्परिणाम सहने के अतिरिक्त उसे क्या मिला है? सहसा ममता से मेरा मन भर आया; परन्तु नाव की ओर बढ़ते हुए मेरे पैर, फैलते हुए अंधकार में से एक स्त्री-मूर्ति को अपनी ओर आता देख ठिठक रहे। साँवले, कुछ लम्बे-से मुखड़े में पतले स्याह ओठ कुछ अधिक स्पष्ट हो रहे थे। आंखें छोटी पर व्यथा से आर्द्र थीं। मलिन, बिना किनारी की गाढ़े की धोती ने उसके सलूकारहित अंगों को भलीभाँति ढक लिया था, परन्तु तब भी शरीर की सुडौलता का आभास मिल रहा था। कंधे पर हाथ रखकर वह जिस दुर्बल अर्धनग्न बालक को अपने पैरों से चिपकाए



हुए थी, उसे मैंने संध्या के झुटपुटे में ठीक से नहीं देखा।

स्त्री ने रुक-रुककर कुछ शब्दों और कुछ संकेत में जो कहा, उससे मैं केवल यह समझ सकी कि उसके पति नहीं हैं, दूसरों के घर लीपने-पोतने का काम करने वह चली जाती है और उसका यह अकेला लड़का ऐसे ही घूमता रहता है। मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया करूं, तो यह कुछ तो सीख सके।

दूसरे इतवार को मैंने उसे सबसे पीछे अकेले एक ओर दुबक कर बैठे हुए देखा। पक्का रंग, पर गठन में विशेष सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली, पर सचेत आंखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं। कसकर बंद किए हुए पतले ओठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोच भरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी। उभरी हड्डियों वाली गर्दन को सम्भाले हुए झुके कंधों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बांहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएं। निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे। बस ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुंजाइश, न शरीर में।

पर उसकी सचेत आंखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा भरी थी। वे निरन्तर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी ही रहती थीं। मानो मेरी सारी विद्या-बुद्धि को सीख लेना ही उनका ध्येय था।

लड़के उससे कुछ खिंचे-खिंचे से रहते थे। इसलिए नहीं कि यह कोरी था, वरन्

इसलिए कि किसी की मां, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घीसा से दूर रहने की नितांत आवश्यकता उन्हें कान पकड़-पकड़ कर समझा दी थी। यह भी उन्होंने बताया और बताया घीसा के सबसे अधिक कुरूप नाम का रहस्य। बाप तो जन्म से पहले ही नहीं रहा। घर में कोई देखने-भालने वाला न होने के कारण मां उसे बंदरिया के बच्चे के समान चिपकाए फिरती थी। उसे एक ओर लिटाकर जब वह मज़दूरी के काम में लग जाती थी, तब पेट के बल घसिट-घसिट कर बालक संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था।

फिर धीरे-धीरे अन्य स्त्रियां भी मुझे आते-जाते रोककर अनेक प्रकार की भाव-भंगिमा के साथ एक विचित्र सांकेतिक भाषा में घीसा की जन्म-जात अयोग्यता का परिचय देने लगीं। क्रमशः मैंने उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी जाना।

उसका बाप था तो कोरी, पर बड़ा ही अभिमानी और भला आदमी बनने का इच्छुक। डलिया आदि बुनने का काम छोड़कर वह थोड़ी बढई गिरी सीख आया और केवल इतना ही नहीं, एक दिन चुपचाप दूसरे गांव से युवती वधू लाकर उसने अपने गांव की सब सजातीय सुंदरी बालिकाओं को उपेक्षित और उनके योग्य माता-पिता को निराश कर डाला। मनुष्य इतना अन्याय सह सकता है, परन्तु ऐसे अवसर पर भगवान की असहिष्णुता प्रसिद्ध ही है। इसी से जब गांव के चौखट-किवाड़ बनाकर और ठाकुरों के घरों में सफेदी करके उसने कुछ ठाट-बाट से रहना आरम्भ किया, तब अचानक हैजे के बहाने वह

वहां बुला लिया गया, जहां न जाने का बहाना न उसकी बुद्धि सोच सकी, न अभिमान।

पर स्त्री भी कम गर्वीली न निकली। गांव के अनेक विधुर और अविवाहित कोरियों ने केवल उदारतावश ही उसकी नैया पार लगाने का उत्तरदायित्व लेना चाहा, परन्तु उसने केवल कोरा उत्तर ही नहीं दिया, प्रत्युत उसे नमक-मिर्च लगाकर तीत भी कर दिया। कहा - 'हम सिंघ के मेहरारू होइके का सियारन के ब्याब।' फिर बिना स्वर-ताल के आंसू गिराकर, बाल खोलकर, चूड़ियां फोड़कर और बिना किनारे की धोती पहनकर जब उसने बड़े घर की विधवा का स्वांग भरना आरम्भ किया, तब तो सारा समाज क्षोभ के समुद्र में डूबने-उतराने लगा। उस पर घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छह महीने बाद, परन्तु उस समय के संबंध में क्या कहा जाए, जिसका कभी एक क्षण वर्ष-सा बीतता है और कभी एक वर्ष क्षण हो जाता है। इसी से यदि छह मास का समय रबर की तरह खिंचकर एक साल की अवधि तक पहुंच गया, तो इसमें गांव वालों का क्या दोष!

000

यह कथा अनेक क्षेपकोमय विस्तार के साथ सुनाई तो गई थी मेरा मन फेरने के लिए और फिरा भी, परन्तु किसी सनातन नियम से कथा वाचक की ओर न फिरकर कथा के नायकों की ओर फिर गया और इस प्रकार घीसा मेरे और अधिक निकट आ गया। वह अपना जीवन-संबंधी अपवाद

कदाचित् पूरा नहीं समझ पाया था; परन्तु अधूरे का भी प्रभाव उस पर कम न था, क्योंकि वह सबको अपनी छाया से इस प्रकार बचाता रहता था, मानो उसे कोई छूत की बीमारी हो।

पढ़ने, उसे सबसे पहले समझने, उसे



व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक का उत्तरदायित्व बड़ी गम्भीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था। इसी से कभी-कभी मन चाहता था कि उसकी मां से उसे मांग ले जाऊँ और अपने पास रखकर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ - परन्तु उस उपेक्षिता, पर मानिनी विधवा का वही एक सहारा था। वह अपने पति का स्थान छोड़ने पर प्रस्तुत न होगी, यह भी मेरा मन जानता था और उस बालक के बिना उसका जीवन कितना दुर्वह हो सकता है, यह भी मुझसे छिपा न था। फिर नौ साल के कर्तव्यपरायण घीसा की गुरु-भक्ति देखकर उसकी मातृ-भक्ति के संबंध में कुछ संदेह करने का स्थान ही नहीं रह जाता था और इस तरह घीसा ही उन्हीं कठोर परिस्थितियों में रहा, जहाँ क्रूरतम नियति ने केवल अपने मनोविनोद के लिए ही उसे रख दिया था।

शनिश्चर के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथों से पीपल की छाया को गोबर-मिट्टी से पीला चिकनापन दे आता था। फिर इतवार को मां के मज़दूरी पर जाते ही एक मैले, फटे कपड़े में बंधी मोटी-रोटी और कुछ नमक या थोड़ा चबेना और एक डली गुड़ बगल में दबाकर, पीपल की छाया को एक बार फिर झाड़ने-बुहारने के पश्चात् वह गंगा के तट पर आ बैठता और अपनी पीली सतेज आंखों पर क्षीण सांवले हाथ की छाया कर दूर-दूर तक दृष्टि को दौड़ाता रहता। जैसे ही उसे मेरी नीली सफेद नाव की झलक दिखाई पड़ती, वैसे ही वह अपनी पतली टांगों पर तीर के समान उड़ता और बिना नाम लिए हुए ही साथियों को सुनाने के

लिए गुरु साहब कहता हुआ फिर पेड़ के नीचे पहुंच जाता, जहाँ न जाने कितनी बार दुहराये-तिहराये हुए कार्यक्रम की एक अंतिम आवृत्ति आवश्यक हो उठती। पेड़ की नीची डाल पर रखी हुई मेरी शीतलपाटी उतार कर बार-बार झाड़-पोंछकर बिछाई जाती, कभी काम न आने वाली सूखी स्याही से काली कच्चे कांच की दवात, टूटे निब और उखड़े हुए रंगवाले भूरे, हरे कलम के साथ पेड़ के कोटर से निकालकर यथास्थान रख दी जाती और तब इस विचित्र पाठशाला का विचित्र मंत्री और निराला विद्यार्थी कुछ आगे बढ़कर मेरे सप्रणाम स्वागत के लिए प्रस्तुत हो जाता।

महीने में चार दिन ही मैं वहाँ पहुंच सकती थी और कभी-कभी काम की अधिकता से एक-आध छुट्टी का दिन और भी निकल जाता था; पर उस थोड़े से समय और इने-गिने दिनों में भी मुझे उस बालक के हृदय का जैसा परिचय मिला, वह चित्र के एलबम के समान निरन्तर नवीन-सा लगता है।

000

मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबंध किए हुए ही उन बेचारों को सफाई का महत्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे-के-तैसे ही सामने थे - केवल कुछ गंगाजी में मुंह इस तरह धो आए थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ के हाथ-पांव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे। और कुछ न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी की कहावत चरितार्थ करने

के लिए मैले फटे कुरते घर ही छोड़ कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे, जिसमें उनके प्राण, रहने पर ही आश्चर्य है। घीसा गायब था। पूछने पर लड़के काना-फूसी करने को या एक साथ सभी उसकी अनुपस्थिति का कारण सुनाने को आतुर होने लगे। एक-एक शब्द जोड़-तोड़कर समझना पड़ा कि घीसा मां से कपड़ा धोने के साबुन के लिए तभी से कह रहा था - मां को मज़दूरी के पैसे मिले नहीं और दुकानदार ने नाज़ लेकर साबुन दिया नहीं। कल रात को मां को पैसे मिले और आज सबेरे वह सब काम छोड़कर पहले साबुन लेने गई। अभी लौटी है, अतः घीसा कपड़े धो रहा है, क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा-धोकर साफ कपड़े पहन कर आना। और अभागे के पास कपड़े ही क्या थे। किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता, जिसकी एक आस्तीन आधी थी और एक अंगोछा-जैसा फटा टुकड़ा। जब घीसा नहाकर गीला अंगोछा लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ, तब आंखें ही नहीं, मेरा रोम-रोम गीला हो गया। उस समय समझ में आया कि द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य से अंगूठा कैसे कटवा दिया था।

000

एक दिन न जाने क्या सोचकर मैं उन विद्यार्थियों के लिए 5-6 सेर जलेबियां ले गई; पर कुछ तोलने वाले की सफाई से, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहां की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पांच से अधिक न मिल सकीं। एक कहता था - मुझे एक कम मिली, दूसरे ने

बताया - मेरी अमुक ने छीन ली। तीसरे को घर में सोते हुए छोटे भाई के लिए चाहिए, चौथे को किसी और की याद आ गई। पर इस कोलाहल में अपने हिस्से की जलेबियां लेकर घीसा कहां खिसक गया, यह कोई न जान सका। एक नटखट अपने साथी से कह रहा था - “सार एक ठो पिलवा पाले है, ओही का देय बरे गा होई।” पर मेरी दृष्टि से संकुचित होकर चुप रह गया और तब तक घीसा लौटा ही। उसका सब हिसाब ठीक था - जलखई वाले छन्ने में दो जलेबियां लपेट कर वह माई के लिए छप्पर में खोंस आया है, एक उसने अपने पाले हुए, बिना मां के कुत्ते के पिल्ले को खिला दी और दो स्वयं खाली। “और चाहिए” पूछने पर उसकी संकोच भरी आंखें झुक गई - ओठ कुछ हिले। पता चला कि पिल्ले को उससे कम मिली है। “दें तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक और दे दें।”

000

और होली के पहले की एक घटना तो मेरी स्मृति में ऐसे गहरे रंगों से अंकित है, जिसका धुल सकना सहज नहीं। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य धीरे-धीरे बढ़ रहा था और किसी दिन उसके चरम सीमा तक पहुंच जाने की पूर्ण सम्भावना थी। घीसा दो सप्ताह से ज्वर में पड़ा था - दवा मैं भिजवा देती थी; परन्तु देखभाल का कोई ठीक प्रबंध न हो पाता था। दो-चार दिन उसकी मां स्वयं बैठी रही। फिर एक अंधी बुढ़िया को बैठाकर काम पर जाने लगी।

इतवार की सांझ को मैं बच्चों को विदा दे, घीसा को देखने चली; परन्तु पीपल

के पचास पग दूर पहुंचते-पहुंचते उसी को डगमगाते पैरों से गिरते-पड़ते अपनी ओर आते देख, मेरा मन उद्विग्न हो उठा। वह तो इधर पंद्रह दिन से उठा ही नहीं था; अतः मुझे उसके सन्निपातग्रस्त होने का ही संदेह हुआ। उसके सूखे शरीर में तरल विद्युत-सी दौड़ रही थी, आंखें और भी सतेज और मुख ऐसा था जैसे हल्की आंच में धीरे-धीरे लाल होने वाला लोहे का टुकड़ा।

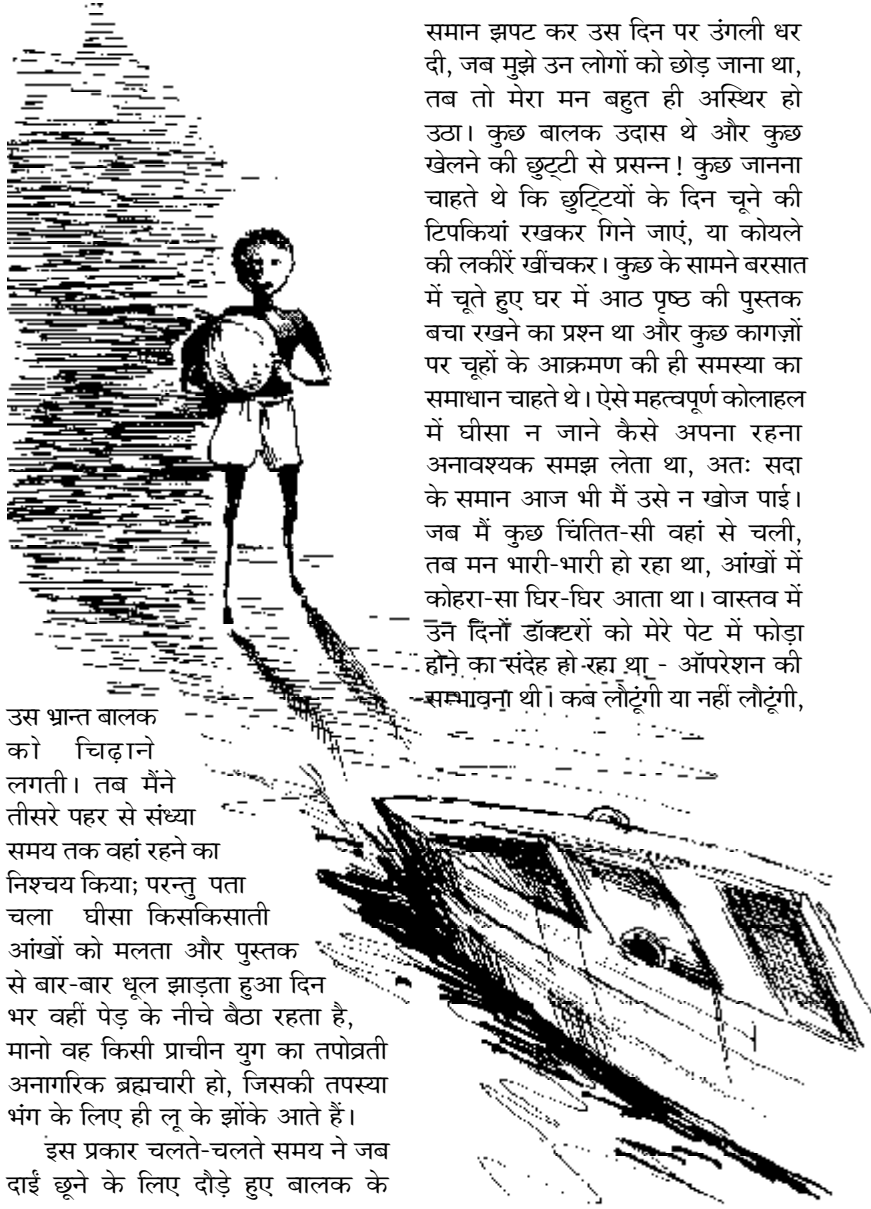
पर उसके वात-ग्रस्त होने से भी अधिक चिंताजनक उसकी समझदारी की कहानी निकली। वह प्यास से जाग गया था; पानी पास मिला नहीं और मनियां की अंधी आजी से मांगना ठीक न समझकर वह चुपचाप कष्ट सहने लगा। इतने में मुल्लू के कक्का ने पार से लौटकर दरवाज़े से ही अंधी को बताया कि शहर में दंगा हो रहा है और तब उसे गुरु साहब का ध्यान आया। मुल्लू के कक्का के हटते ही वह ऐसे हौले-हौले उठा कि बुढ़िया को पता ही न चला और कभी दीवार, कभी पेड़ का सहारा लेता-लेता इस ओर भागा। अब वह गुरु साहब के गोड़ धर कर यहीं पड़ा रहेगा; पर पार किसी तरह भी न जाने देगा।

तब मेरी समस्या और भी जटिल हो गई। पार तो मुझे पहुंचना था ही; पर साथ ही बीमार घीसा को ऐसे समझाकर, जिससे उसकी स्थिति और गंभीर न हो जाए। पर सदा के संकोची, नम्र और आज्ञाकारी घीसा का इस दृढ़ और हठी बालक में पता ही न चलता था। उसने परसाल ऐसे ही अवसर पर हताहत दो मल्लाह देखे थे और कदाचित् इस समय उसका रोग से विकृत मस्तिष्क

उन चित्रों में गहरा रंग भर कर मेरी उलझन को और उलझा रहा था। पर उसे समझाने का प्रयत्न करते-करते अचानक ही मैंने एक ऐसा तार छू दिया, जिसका स्वर मेरे लिए भी नया था। यह सुनते ही कि मेरे पास रेल में बैठकर दूर-दूर से आए हुए बहुत से विद्यार्थी हैं जो अपनी मां के पास साल भर में एक बार ही पहुंच पाते हैं और जो मेरे न जाने से अकेले घबरा जाएंगे, घीसा का सारा हठ, सारा विरोध ऐसे बह गया जैसे वह कभी था ही नहीं। और तब घीसा के समान तर्क की क्षमता किसमें थी! जो सांझ को अपनी माई के पास नहीं जा सकते, उनके पास गुरु साहब को जाना ही चाहिए। घीसा रोकेगा, तो उसके भगवान जी गुस्सा हो जाएंगे, क्योंकि वे ही तो घीसा को अकेला बेकार घूमता देखकर गुरु साहब को भेज देते हैं, आदि-आदि उसके तर्कों का स्मरण कर आज भी मन भर आता है। परन्तु उस दिन मुझे आपत्ति से बचाने के लिए अपने बुखार से जलते हुए अशक्त शरीर को घसीट लाने वाले घीसा को जब उसकी टूटी खटिया पर लिटा कर मैं लौटी, तब मेरे मन में कौतूहल की मात्रा ही अधिक थी।

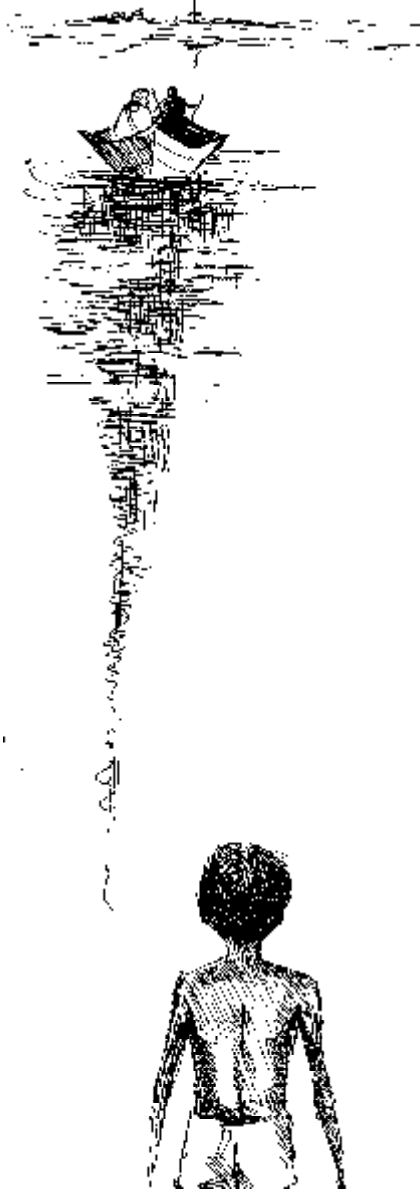
000

इसके उपरांत घीसा अच्छा हो गया और धूल और सूखी पत्तियों को बांध कर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से उसका रोज़ संग्राम छिड़ने लगा - झाड़ते-झाड़ते ही वह पाठशाला धूल-धूसरित होकर भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिपकर तथा कंकालशेषी शाखों में उलझते, सूखे पत्तों को पुकारते वायु की संतप्त सरसर से मुखरित होकर



समान झपट कर उस दिन पर उंगली धर दी, जब मुझे उन लोगों को छोड़ जाना था, तब तो मेरा मन बहुत ही अस्थिर हो उठा। कुछ बालक उदास थे और कुछ खेलने की छुट्टी से प्रसन्न! कुछ जानना चाहते थे कि छुट्टियों के दिन चूने की टिपकियां रखकर गिने जाएं, या कोयले की लकीरें खींचकर। कुछ के सामने बरसात में चूते हुए घर में आठ पृष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागज़ों पर चूहों के आक्रमण की ही समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसे महत्वपूर्ण कोलाहल में घीसा न जाने कैसे अपना रहना अनावश्यक समझ लेता था, अतः सदा के समान आज भी मैं उसे न खोज पाई। जब मैं कुछ चिंतित-सी वहां से चली, तब मन भारी-भारी हो रहा था, आंखों में कोहरा-सा धिर-धिर आता था। वास्तव में उन दिनों डॉक्टरों को मेरे पेट में फोड़ा होने का संदेह हो रहा था - ऑपरेशन की सम्भावना थी। कब लौटूंगी या नहीं लौटूंगी,

उस भ्रान्त बालक को चिढ़ाने लगती। तब मैंने तीसरे पहर से संध्या समय तक वहां रहने का निश्चय किया; परन्तु पता चला घीसा किसकिसाती आंखों को मलता और पुस्तक से बार-बार धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है, मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती अनागरिक ब्रह्मचारी हो, जिसकी तपस्या भंग के लिए ही लू के झोंके आते हैं।
इस प्रकार चलते-चलते समय ने जब दाईं छूने के लिए दौड़े हुए बालक के



यही सोचते-सोचते मैंने फिर कर चारों ओर जो आर्द्र दृष्टि डाली, वह कुछ समय तक उन परिचित स्थानों को भेंट कर वहीं उलझ रही।

पृथ्वी के उच्छ्वास के समान उठते हुए धुंधलेपन में वे कच्चे पर आकंठ-मग्न हो गए थे - केवल फूस के मटमैले और खपरैल के कथई और काले छप्पर, वर्षा में बढ़ी गंगा के मिट्टी जैसे जल में पुरानी नावों के समान जान पड़ते थे। कछार की बालू में दूर तक फैले तरबूज़ और खरबूज़ के खेत अपनी सिर की और फूस के मुट्ठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी पर्णकृतियों के कारण जल में बसे किसी आदिम द्वीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें एक-दो दीए जल चुके थे, तब मैंने दूर पर एक छोटा-सा काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह घीसा ही होगा, यह मैंने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे विदा देना है, यह उसका नन्हा हृदय अपनी पूरी संवेदना-शक्ति से जान रहा था, इसमें संदेह नहीं था। परन्तु उस उपेक्षित बालक के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे बिछोह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है, यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि उस धूमिल गोधूली में बादामी कागज़ पर काले चित्र के समान लगने वाला नंगे बदन घीसा एक बड़ा तरबूज़ दोनों हाथों में सम्हाले था, जिसमें बीच के कुछ कटे भाग में से भीतर की ईषत-लक्ष्य ललाई चारों ओर के गहरे हरेपन में कुछ बन्द गुलाबी फूल-जैसी जान पड़ती थी।

घीसा के पास न पैसा था न खेत -

तब क्या वह इसे चुरा लाया है! मन का संदेह बाहर आया ही और तब मैंने जाना कि जीवन का खरा सोना छिपाने के लिए मलिन शरीर को बनाने वाला ईश्वर उस बूढ़े आदमी से भिन्न नहीं, जो अपनी सोने की मोहर को कच्ची मिट्टी की दीवार में रखकर निश्चित हो जाता है। घीसा गुरु साहब से झूठ बोलना भगवान जी से झूठ बोलना समझता है। वह तरबूज कई दिन पहले देख आया था। माई के लौटने में जाने क्यों देर हो गई, तब उसे अकेले ही खेत पर जाना पड़ा। वहां खेत वाले का लड़का था, जिसकी उसके नए कुरते पर बहुत दिन से नज़र थी। प्रायः सुना-सुना कर कहता था कि जिनकी भूख जुठी पत्तल से बुझ सकती है, उनके लिए परोसा लगाने वाले पागल होते हैं। उसने कहा - पैसा नहीं है, तो कुरता दे जाओ। और घीसा आज तरबूज न लेता, तो कल उसका क्या करता। इससे कुरता दे आया; पर गुरु साहब को चिंता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि गर्मी में वह कुरता पहनता ही नहीं और जाने-आने के लिए पुराना ठीक रहेगा। तरबूज सफेद न हो, इसलिए कटवाना पड़ा - मीठा है या नहीं यह देखने के लिए, उंगली से कुछ निकाल भी लेना पड़ा।

गुरु साहब न लें, तो घीसा रात भर

रोएगा - छुट्टी भर रोएगा। ले जावें तो वह रोज़ नहा-धोकर पेड़ के नीचे पढ़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिखकर दिखा सकेगा।

और तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।

फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबंध कर मैं बाहर चली गई और लौटते-लौटते कई महीने लग गए। इस बीच में उसका कोई समाचार न मिलना ही सम्भव था। जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका, तब घीसा को उसके भगवान जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश दे दिया था - आज वह कहानी दोहराने की मुझ में शक्ति नहीं है; पर सम्भव है आज के कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मास के वर्ष बन जाने पर मैं दार्शनिक के समान धीर-भाव से उस छोटे जीवन का उपेक्षित अंत बन सकूंगी। अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूंढती रहूं।

महादेवी वर्मा: (1907-1987) आधुनिक हिन्दी साहित्य के छायावादी कवियों में एक प्रमुख कवियत्री। तत्कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति पर भी लेखन किया। कविता संग्रह एवं संस्मरण भी प्रकाशित हुए हैं। अतीत के चलचित्र और ऋंगला की कड़ियां प्रमुख गद्य संग्रह हैं। यह लेख **महादेवी वर्मा संचयिता**, संपादक - निर्मल वर्मा। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालय के लिए प्रकाशित। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2002 से साभार।

चित्रांकन: उदय खरे: उदय शौकिया चित्रकार हैं। भोपाल में निवास।